वर्तमान संदर्भ में जवाहर लाल नेहरू का सामाजिक न्याय

*डॉ. अमिता वर्मा

शोधपत्र-राजनीति विज्ञान

आज स्वतन्त्रता के 62 वर्ष उपरांत भी सामाजिक न्याय भारतीय समाज के लिये एक गंभीर समस्या एवं चुनौती है। इसमें सन्देह नहीं है कि देश में विशेषकर ग्रामीण इलाकों में गरीबों और दलितों की विशाल जनसंख्या की पीड़ा का मुख्य कारण उनका आर्थिक पिछड़ापन है क्योंकि देश की दस पूर्ण पंचवर्षीय योजनाओं की समाप्ति तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भारी पूंजी निवेश के बावजूद ग्रामीण आबादी जो कि कुल भारत की जनसंख्या की दो–तिहाई से भी अधिक है, के जीवन स्तर में कोई आधारभूत परिर्वतन नहीं आ पाया है। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए नेहरू के नेत त्व में जिस समाजवाद का विकास भारत में हुआ उसकी रूप–रेखा निश्चित करना भी सरल कार्य नहीं है। ज्ञातव्य है कि नेहरू को तीन प्रकार के सुअवसर उपलब्ध थे।

प्रथम स्वतन्त्रता के पूर्व महात्मा गांधी के साथ आजादी की लड़ाई में त्याग और बलिदान के कारण तथा दूसरा कांग्रेस के रूप में एक बना बनाया संगठन और तीसरा कांग्रेस पर उनका एकाधिकारी नेत त्व प्राप्त था। उन्हें स्वतन्त्रता के बाद विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली वाले देश का विश्वास और नेत त्व। इस विशाल देश की अधिकांश जनता निर्धन थी, जिसकी मुक्ति का एक मात्र उपाय नेहरू के मत में समाजवाद था। इसकी स्थापना के लिये उन्होंने स्वयं को कटिबद्ध घोषित किया। नेहरू के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई वह दरार थी जो उन्होंने तथाकथित सिद्धान्तों एवं व्यवहारिक पद्धतियों के मध्य बढ़ने दी थी। इतना ही नहीं राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोणों से भी सर्व–स्वीकृत एवं सुस्थापित कार्य प्रणालियों के नवीन अर्थ एवं अभिप्राय प्रस्तुत करने की भी उन्होंने चेष्टा की थी। इस द्वितीय विधि का अवलंबन उन्होंने रूढ़िवादी राजनीतिज्ञों एवं अर्थशास्त्रियों के विरोध के लिये किया था।

समाजवाद को संसदीय प्रजातन्त्र से मिश्रित करने का नेहरू ने सदैव प्रयास किया। वह प्रजातन्त्र को पूर्ण शक्ति सम्पन्न मानते थे। दूसरे शब्दों में समाजवाद से उनका तात्पर्य आर्थिक प्रजातंत्र से था। वह प्रजातन्त्र से ही आर्थिक विषमता को समाप्त करना चाहते थे। यह मान लेना कठिन है कि नेहरू के विचार सैद्धान्तिक विश्वास से कुछ अधिक अर्थ रखते थे, क्योंकि जीवन के अन्तिम वर्षो में और इन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने में वे अपनी ही नीतियों के प्रतिवादी लगने लगे थे। अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे, कि सर्वहारा का राज्य स्थापित किया जाना आवश्यक नहीं है। सत्ता पर अधिकार मतदाता की इच्छा से किया जा सकता है भौतिक शक्ति अथवा क्रान्ति से नहीं। उनका मत था कि क्रान्ति की आवश्यकता तब पड़ती है जब मतदाता को अपनी इच्छा व्यक्त करने का अवसर न मिलता हो।

नेहरू के सामने एक ही लक्ष्य था: वे देश में प्रजातान्त्रिक तरीके से समाजवाद लाना चाहते थे। समाजवाद की दिशा में उन्होंने दो सुस्पष्ट कदम उठाये, एक जमींदारी प्रथा की समाप्ति तथा सहकारी आन्दोलन, दूसरा करों का विस्तार कर समता लाने का प्रयास। परन्तु दोनों में से एक का भी उनकी इच्छा के अनुकूल परिणाम नहीं निकला।

वास्तव में नेहरू एक संवेदनशील, भावुक राजनीतिज्ञ थे। उनका अर्न्तद्वन्द वास्तव में उस लेखक का है जो अपने से और दुनिया से एक साथ जुड़ता है। यही कारण है कि नेहरू अपनी व्यक्तिवादी दुनिया को ध्वस्त नहीं कर पाये, लेकिन उन्होंने इसे बहुत महत्व भी नहीं दिया और वे जीवनभर समाजवादी बने रहे।

निश्चय ही, नेहरू ने जो बीज बोये या पौधे लगाये, उनके वृक्ष के फल आधुनिक भारत को मिल रहे है, इसमें कोई दो राय नहीं है, लेकिन उन फलों के अधिकांश भाग का अभिजात्य वर्ग ने ही उपभोग किया है। जिस प्रकार स्वर्ग से गंगा उतरी परन्तु शिवजी ने उसे अपनी ही जटाओं में सोख लिया।

उसी प्रकार नेहरू के प्रयासों से भारत में जो प्रगति हुई है उससे भारत का अभिजात्य वर्ग ही लाभान्वित हुआ है, उसका लाभ गरीबों और पिछड़े हुओं तक नहीं पहुँच पाया। इस संबंध में नेहरू का दोष केवल इतना था कि वे इतने सरल थे, उन्होंने जो भी लोकतान्त्रिक संस्थायें बनाई और समाजवाद की दिशा

* व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, आर.एल. सहरिया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कालाडेरा, जयपुर

में कदम उठाये, उनके प्रतिफल को अभिजात्य वर्ग के संरक्षण में इस विश्वास से छोड़ दिया कि यह वर्ग समाज में प्रबुद्ध वर्ग की नैतिक जिम्मेदारी निभाते हुये अग्रज की भूमिका अदा करेगा और छोटे भाई अर्थात् वंचितों की जायदाद को हड़प नहीं जायेगा। परन्तु नेहरू का यह विश्वास एक भावुकता सिद्ध हुआ। नेहरू के समय में परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की थी कि वे चाह कर भी कुछ कदम ऐसे नहीं उठा पाये, जिससे आम जनता (निचले स्तर) की सत्ता में भागीदारी बढ़ती एवं विकेन्द्रीकरण होता। वे ब्रिटिशकाल से चली आ रही दोषपूर्ण नौकरशाही, प्रशासनिक व्यवस्था को भी नहीं बदल सके, क्योंकि उस समय राष्ट्रीय एकता की समस्या बड़ी गंभीर थी। उसके बाद परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनी कि केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई और नौकरशाही दिनों–दिन शक्तिशाली होती गई।

विचारों के संसार में नेहरू सदा उस एकाकी यात्री के समान रहे जो ऐसी शंकाओं का समाधान खोज रहा है जो उसकी पकड़ से बाहर रही है। उनके विचारों में राष्ट्रवाद और जातिगत समानता के आदर्श के प्रति उद्दाम निष्ठा निहित थी, परन्तु इनमें से कोई भी उनके दृष्टिकोण पर छा नहीं सकी थी। बुद्धि से वे संशयवादी थे।

नेहरू का राष्ट्र के उत्थान, विकास, समाजवाद और गरीबी मिटाने का सपना अपूर्ण रह गया। इसकी विफलता का मूल कारण उनके इर्द–गिर्द ऐसे लोगों का घेरा था जो मात्र स्वीकारोक्तियाँ करते रहे और नीतियों का व्यावहारिक कार्यान्वयन नहीं हो पाया। वे उस राजनीतिक तन्त्र को बनाने में असफल रहे, जिसके माध्यम से उनके आदर्श मूर्त हो पाते।

"नेशनल हैराल्ड" के भूतपूर्व संपादक तथा प्रसिद्ध राजनीतिक व्याख्याकार एम. चलपति राव ने भारत के चिंतन को नेहरू की मौलिक देन और उनके चिन्तन तथा नीतियों की प्रासंगिकता का जो चित्रण किया है, वह हमें नेहरू की महानता, उनके आदर्शो, उनके मार्ग दर्शन और उनकी व्यावहारिकता का दिग्दर्शन कराता है। जवाहर लाल नेहरू इतिहास का अंग बन गये है, हालांकि उन्हें गुजरे अभी बहुत वर्ष नहीं हुये है। इतिहास बड़ा सख्त दिल मालिक होता है, सो जवाहर लाल नेहरू की परीक्षा बारम्बार होती रहेगी।

वे बहुत सी परीक्षायें झेल चुके है और संभावना यही है कि भविष्य में बहुत सी परीक्षाओं में खरे उतरेंगे। उनमें अचूक इतिहास बोध था, सो इतिहास द्वारा जांचा–परखा जाना निश्चय ही उन्हें बुरा न लगता। वे ऐतिहासिक शक्तियों से दो–दो हाथ जूझे, इतिहास के उच्चतर ध्येयों को अपना ध्येय बनाकर चले और यों तो किसी भी व्यक्ति के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूरी तरह सफल रहा, पर वे अपनी उदारता और दृष्टिकोण की विशालता के कारण अपने समकालीनों में उठकर दिखते थे।

27 मई, 1964 को उनके निधन के साथ ही भारत में एक युग की समाप्ति हुई जिसे "नेहरू युग" कहा जाता है। नेहरू आजीवन भारत के नव–निर्माण में लगे रहे, अपने जीवन के प्रत्येक क्षण वे भारत की प्रगति, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, लोकतान्त्रिक समाजवाद और धर्म निरपेक्षवाद और स्वतंत्र विदेश नीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिये जूझते रहे। नेहरू एक राष्ट्रवादी थे।

मानव मात्र के कल्याण की इच्छा रखने के नाते उन्होंने सदैव विश्व–बन्धुत्व, सहयोग, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और संप्रभुता, असंलग्नता, निःशस्त्रीकरण तथा अणु शक्ति के शांतिपूर्ण रचनात्मक प्रयोग का समर्थन किया। उन्होंने इन बातों के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों पर बल दिया। उन्होंने विश्व–संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया और मानवता के कल्याण का मूल मंत्र दुनिया के सामने रखा।

नेहरू का चिन्तन आज भी प्रासंगिक है क्योंकि हमारे सामने की कठिनतायें तथा जटिलतायें हमें निराश करती है। आज लोगों में ऐसा सोचने की प्रवृत्ति आती जा रही है कि हमसे पहले के लोगों ने हमारे काम को और मुश्किल बना दिया, लेकिन यह स्वीकारते हमें हिचक नहीं होनी चाहिये कि उन वर्षो की उपलब्धियों को जनसंख्या वृद्धि ने निष्फल कर दिया।

उन्होंने एक बार कहा था "हम सभी गलती कर सकते है, और मैं यह कभी नहीं मान सकता कि कोई संगठन, कोई विचारक या कोई देश गलत नहीं हो सकता।" घरेलू तथा विदेशी मामलों में उनके सामने कठिनाइयाँ तथा बाधाएँ आई–जैसे चीन के साथ विवाद–लेकिन अपने जीवन के अन्तिम दिन तक भी उन्होंने इनका साहस के साथ सामना किया।

जब हम "नेहरू युग" पर दृष्टि डालते है तो किसी विशेष निर्णय या नीति के बारे में मत–भिन्नता हो सकती है, लेकिन इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं कि अविवेकवाद, सामाजिक रूढ़िवाद तथा सभी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक मोहवाद जैसी धारणाओं के प्रति उनकी अस्वीकृति, व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा गरिमा के प्रति सम्मान, लोकतान्त्रिक प्रणाली में दृढ़ विश्वास, सैनिक शक्ति तथा हिंसा के प्रति विरक्ति, उनका इस बात पर बल देना कि अच्छे साध्य से बुरे साधन का औचित्य सिद्ध नहीं होता और परमाणु युग में विश्व सहयोग के अभाव में विश्वनाद अवश्यम्भावी है। इन बातों पर कोई भी ऊंगली नहीं उठा सकता।

समय का चक्र घूम रहा था और उसके साथ ही उनकी कर्म की गति भी, दोनों ने कभी रूकना नहीं सीखा था। उन्होंने अपने लिखने के पैड पर अमेरिकन कवि रॉबर्ट फ्रोस्ट की कविता की चंद पक्तियाँ लिखी थी, जो उन्हें अतिप्रिय थी :

वन सुंदर हैं, अंधेरे हैं और गहन हैं,
परन्तु मुझे अपने वायदे पूरे करने हैं,
और सोने से पहले मीलों जाना हैं,
और सोने से पहले मीलों जाना हैं,

और यह महामानव चिरनिद्रा में सोने से पहले भारत को समकालीन आजाद हुये देशों की तुलना में मीलों आगे ले आये, जहां आज खड़े होकर विश्व की महान शक्तियों के समकक्ष खड़े हैं—समानता के आधार पर। किन्तु आज भारतीय शासक वर्ग की मानसिकता कुछ इस प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ में घुलमिल गई है कि उससे जनता का हित गौण हो गया है। क्या आज देश के सभी नागरिक आजाद हो पाये है ?

आजादी से हमारा अभिप्राय क्या तथा कितना है ? क्या हर नागरिक को रोटी, कपड़ा और मकान की जो न्यूनतम आवश्यकता है मिल पाई है? क्या शिक्षा के दरवाजे सभी व्यक्तियों के लिए खुल गए है ? क्या आज भी बंधुआ मजदूरी की क्रूर प्रथा जारी नहीं है?

धर्म एवं जाति के नाम पर आए दिन होने वाली हिंसा हमारे जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग बनती जा रही है। जातीय एवं धार्मिक आधार पर सम्मेलनों के आयोजनों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। साम्प्रदायिकता बढ़ती जा रही है, फिर भी हम भयभीत और चिंतित नहीं है। आज हमारे समाज में एक बार पुनः जाति–पाति, ऊँच–नीच, सवर्ण–अवर्ण, धर्म और साम्प्रदायिकता की जड़ें मजबूत हो रही है। फिर भी हम इन घटनाओं से शिक्षा ग्रहण नहीं कर पा रहे है, और सामाजिक न्याय के आदर्श से दूर हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात कि है वर्तमान में सामाजिक न्याय की प्रविधियों की गुणवत्ता पर निरपेक्ष भाव से विचार किया जाये, सामाजिक न्याय एक बहुत बड़ी चुनौती है और आरक्षण एक छोटी सी प्रारंभिक शुरूआत है। एक व्यक्ति के जीवन में आर्थिक उत्थान के रूप में आरक्षण नीति एक प्रारंभिक कड़ी तो हो सकती है, परन्तु सम्पूर्ण जीवन का कायाकल्प नहीं, आरक्षण नीति के विवाद में सामाजिक न्याय जैसे पवित्र संकल्प की तिलांजलि दी जा रही है।

सामाजिक न्याय के दो महान योद्धाओं नेहरू एवं अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को अपने–अपने आदर्शों, मानकों, विचारों तथा प्रविधियों से आंका किन्तु सदैव प्रजातांत्रिक तरीके से ही पाना चाहा, क्योंकि दोनों का उच्चतम आदर्श मानवीय गरिमा तथा मूल मानवीय गुणवत्ता को प्रतिष्ठित करना था।

सामाजिक न्याय की बुनियाद में समता का आदर्श था, जिस पर नेहरू एवं अम्बेडकर दोनों ने ही कभी समझौता नहीं किया।

स्वामी विवेकानन्द की उद्घोषणा "अरे ऊँची जाति के लोगों, समय रहते हुये, अपने अधिकारों को इन शूद्रों तथा मेहनतकशों के हाथों में सौंप दो, नहीं तो, जब यह उठेगा तो अपनी एक फूँक से तुम्हारी हस्ती को मिटा कर राख कर देगा।"

अम्बेडकर के लिये प्रेरणास्पद रही तथा गांधी की एकीकृत सामाजिक संरचना के लिये मानवीय क्रान्ति नेहरू का पथ प्रदर्शक। परिस्थितिजन्य, वैचारिक एवं विचारधारागत मतभेदों के बावजूद नेहरू एवं अम्बेडकर की दृष्टि में आश्चर्यजनक साम्य है। अतः नेहरू एवं अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के आदर्श को प्राप्त करने की दिशा में 21वीं सदी में व्यक्तिगत, सामाजिक, संस्थानिक एवं शासनिक स्तर पर विचार एवं कर्म दोनों ही दृष्टियों से ईमानदारी पूर्वक प्रयास अवश्यंभावी हैं।